दशलक्षण धर्म का मर्म

~ ब्र. श्री रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

(सोरठा)

क्षमा भाव अविकार, स्वाश्रय से प्रकटे सुखद।

आनन्द अपरम्पार, शत्रु न दीखे जगत में ।।१।।

मार्दव भाव सुधार, निज रस ज्ञानानंद मय।

वेदूँ निज अविकार, नहीं मान नहीं दीनता ।।२।।

सरल स्वभावी होय, अविनाशी वैभव लहूँ।

वांछा रहे न कोय, माया शल्य विनष्ट हो ॥३॥

परम पवित्र स्वभाव, अविरल वर्ते ध्यान में।

नाशे सर्व विभाव, सहजहि उत्तम शौच हो ।।४।।

सत्स्वरूप शुद्धात्म, जानूँ, मानूँ, आचरूँ।

प्रकटे पद परमात्म, सत्य धर्म सुखकार हो ॥५॥

संयम हो सुखकार, अहो अतीन्द्रिय ज्ञानमय ।

उपजे नहीं विकार, परम अहिंसा विस्तरे ।।६।।

निज में ही विश्राम, जहाँ कोई इच्छा नहीं।

ध्याऊँ आतमराम, उत्तम तप मंगलमयी ।।७।।

परभावों का त्याग, सहज होय आनन्दमय।

निज स्वभाव में पाग, रहूँ निराकुल मुक्त प्रभु ।।८।।

सहज अकिंचन रूप, नहीं परमाणु मात्र मम्।

भाऊँ शुद्ध चिद्रूप, होय सहज निर्ग्रंथ पद ।९।।

परम ब्रह्म अम्लान, ध्याऊँ नित निर्द्वन्द्व हो।

ब्रह्मचर्य सुख खान, पूर्ण होय आनंदमय ।।१०।।

एक रूप निज धर्म, दशलक्षण व्यवहार से।

स्वाश्रय से यह मर्म, जाना ज्ञान विरागमय ।।११।।